IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

लोकगीतों का स्वरूप और महत्व

डा. संदीप वर्मा

अस्सिटेंट प्रोफ़ेसर- हिंदी

राजकीय स्नातकोतर महाविद्यालय रानीगंज

प्रतापगढ़

लोक जीवन में लोकगीतों का अस्तित्त्व तभी से स्वीकार किया जाना चाहिए जब से लोक जीवन का अस्तित्त्व है। लोक जीवन के आरम्भ से ही उसकी अनेक कोमल-कठोर अनुभूतियाँ यहाँ भाषा शास्त्र के कठोर-नियमों से मुक्त अपने सहज, सरल और जीवंत रूप में व्यक्त होती हैं। लोकगीत वे पारंपरिक गीत हैं जो किसी समुदाय, संस्कृति या क्षेत्र की लोक परंपराओं, रीति-रिवाजों, जीवनशैली और भावनाओं को व्यक्त करते हैं। ये गीत पीढ़ी-दर-पीढ़ी भौतिक रूप से प्रसारित होते हैं और प्रायः सामान्य लोगों द्वारा गाए जाते हैं। इनमें प्रेम, प्रकृति, त्यौहार, सामाजिक मुद्दे, बीरता या दैनिक जीवन के अनुभवों जैसे विषम शामिल हो सकते हैं। लोकगीतों को भारतीय संस्कृति और साहित्य का एक अभिन्न अंग भी माना जाता हैं। ये गीत न केवल मनोरंजन के साधन होते हैं, बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक मूल्यों को संरक्षित करने का एक प्रभावी माध्यम भी हैं। इस लेख में लोकगीतों के स्वरूप, प्रकार, विशेषताओं और उसके महत्व पर संक्षेप में चर्चा की जाएगी।

उल्लेखनीय है कि लोकगीतों का स्वरूप विविध और गतिशील है, जो विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं और समुदायों के साथ बदलता रहता है। उदाहरण के लिए अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी और पंजाबी लोकगीत अपनी विशिष्टशैली और भावों के लिए प्रसिद्ध हैं। लोकगीत मुख्यतया मौखिक परंपरा का हिस्सा हैं और इन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में गाकर या सुना कर ही संरक्षित किया जाता है। लोकगीतों का स्वभाव सरल और भावपूर्ण होता है जो सामान्य जन को बड़ी सहजता के साथ अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। इनकी रचना में काव्यात्मकता ,लयबद्धता और स्थानीय भाषा का प्रचुर प्रयोग होता है, जो उन्हें क्षेत्रीय संस्कृति का जीवंत प्रतीक बना देता है। अनेक श्रेष्ठ विद्वानों ने लोक गीतों के स्वरूप को परिभाषित करने का प्रयास किया है जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित है-

"लोकगीत में उस लोक समूह का काव्य और संगीत समाहित होता है जिसके साहित्य को लेखन अथवा प्रकाशन से नहीं वरन् मौखिक परंपरा के द्वारा अस्तित्व प्राप्त होता है।"1

डॉ० कुंज बिहारी दास के अनुसार --"लोकगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो सुसंस्कृत, सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"2

सुप्रसिद्ध विद्वान बाबू गुलाब राय के अनुसार- " लोकगीतों के रचनाकार प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी कर लेता है । वह लोक भावना में अपने आप को मिला देता है। लोकगीतों में होता तो है निजीपन ही पर साधारणीकरण एवं समानता कुछ अधिक रहती है, तभी वे वैयक्तिक रस की अपेक्षा जन रस उत्पन्न कर सकते हैं।"3

डॉ० विद्या बिंदू सिंह के अनुसार-" लोकगीतों में हमें जीवन के समस्त पहलुओं के स्वाभाविक चित्र उपलब्ध होते हैं। आज के कुंठा, संत्रास और घुटन भरे वातावरण में लोकगीत मुक्त पवन के झोंके हैं जो मन-प्राण को शीतलता और संतोष का सुख प्रदान करते हैं।" 4

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि- " ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपनी प्रारम्भिक अवस्था में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत ही थे और ग्रामगीतों की भाँति ही सुन-सुन कर याद किए जाते थे। सौभाग्यवश वेद ने बाद में श्रुति से उतर कर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्रामगीत अब भी 'श्रुति' ही हैं। जिस प्रकार वेदों द्वारा आर्य सभ्यता का ज्ञान होता है, उसी प्रकार ग्रामगीतों द्वारा आर्य पूर्व सभ्यता का ज्ञान हो सकता है। ईंट, पत्थर के प्रेमी विद्वान यदि धृष्टता न समझें तो जोर देकर कहा जा सकता है कि ग्रामगीत का महत्व 'मोहन-जोदड़ो' से कहीं अधिक है। मोहन जोदड़ो सरीखे भग्न-स्तूप ग्रामगीतों में भाष्य का काम दे सकते हैं।"5

ऊपर्युक्त परिभाषाओं के अध्ययन-मनन के पश्चात यह कहा जा सकता है कि लोकगीतों का निर्माण एक प्रकार से सामूहिक चेतना द्वारा स्वाभाविक रूप से होता है। वह किसी सुनिश्चित और नियंत्रित साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं होते। जीवन के सहज क्रियाकलापों में लीन जन सामान्य के सहज,सरल एवं निश्चल भाव ही गीतों के रूप में उनके कंठ से स्वतः अवतरित होने लगते हैं। अंततः हम अब्राहम लिंकन के शब्दों का आश्रय लेकर कह सकते हैं कि- लोकगीत ,लोक का,लोक के लिए,लोक द्वारा रचित गीत है ।

लोकगीतों का प्रकार

अपने अकृत्रिम बनावट,सहज मिठास के आकर्षण से युक्त, स्वच्छ हृदय के मार्मिक उद्धार इन लोकगीतों में जितनी सरलता प्रवाहित है उतना ही कठिन काम है इनको वर्गीकृत करना। अनेक विद्वानों ने लोकगीतों को वर्गीकृत करने का स्तुत्य प्रयास किया है किंतु किसी भी विद्वान के मत को सर्व मान्य नहीं माना गया। इस प्रकार लोकगीतों को उनके उद्देश्य और अवसरों के आधार पर कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

संस्कार गीत-

जन्म, विवाह, मुंडन और अन्य सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक अवसरों पर गाए जाने वाले मांगलिक गीत को संस्कार गीत कहा जाता है; जैसे- सोहर, विवाह गीत और पालने का गीत आदि।

ऋतु गीत-

इस प्रकार की गीत विभिन्न प्राकृतिक ऋतुओं के आगमन पर गाए जाते हैं; जैसे- होली के गीत ,फाग,कजरिया तीज और छठ गीत आदि।

कर्म गीत-

ऐसे गीत खेती-किसानी का काम करते हुए गाए जाते हैं; जैसे -धान की रोपाई अथवा कटाई करते हुए गाए जाने वाले कजरी और झूमर आदि गीत।

प्रेम गीत-

इस प्रकार के गीतों में विरह और संयोग की भावनाओं को मार्मिक रूप से व्यक्त करने वाले गीत होते हैं; जैसे - ढोला मारू के गीत,चन्द्रावल अथवा हीरामन के गीत आदि।

धार्मिक गीत-

भक्ति और आध्यात्मिक भावना से परिपूर्ण गीत अथवा भजन इसके अंतर्गत आते हैं। जैसे मीरा, तुलसी और कबीर की रचनाएं।

इसके अतिरिक्त बालगीत अथवा लोरियाँ और विविध सामाजिक-सांस्कृतिक क्रियाकलापों के समय लोक जीवन को व्यक्त करने वाले अनेक गीत भी होते हैं। अंत में हम डॉ. चिंतामणि उपाध्याय के शब्दों में कह सकते हैं कि-" लोकगीतों का वर्ण्य-विषय इतना अधिक व्यापक है कि उसका वर्गीकरण कठिन हो जाता है।"6

लोकगीतों की विशेषताएं -

लोकजीवन और लोक साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। जिस प्रकार लोक जीवन में बनावटीपन को स्थान नहीं मिलता उसी प्रकार लोकगीतों में भी बनावटीपन या कृत्रिमता को कोई स्थान नहीं है। ये गीत जीवन के भोगे हुए यथार्थ अथवा जीवनानुभूति से उत्पन्न होते हैं। इसमें जीवन की सच्चाई का प्रकाश और सादगी की चमक देखी जा सकती है। इन गीतों की रचना भले ही स्वांतः सुखाय के रूप में हुई हो किंतु अपनी सहजता, सरलता, स्वाभाविकता और जीवंतता के कारण वह समस्त मानव मन की संपत्ति बन जाते हैं। सामान परिस्थितियों में ये गीत समस्त मानव मन की हृदय वीणा के मधुर तारों को झंकृत कर देते हैं। इसीलिए ये लोकगीत न केवल मानवीय संवेदना को गहराई से स्पर्श करते हैं अपितु देश-काल की सीमाओं से परे जाकर सर्वकालिक बन जाते हैं। " स्वाभाविकता और सरलता

लोकगीतों की प्रमुख विशेषता होती है। इसलिए काव्यशास्त्र के कृत्रिम नियमों के बंधनों के लिए उसमें कोई स्थान नहीं होता,अतः शास्त्रीय नियमों के उल्लंघन की अनिवार्यता भी लोकगीतों का आवश्यक लक्षण माना गया है।"7

नगरों की चकाचौंध और आडंबर से बहुत दूर गाँव के प्राकृतिक वातावरण में इन गीतों की रचना होती है। प्रकृति से निकट संबंध होने के कारण इन गीतों में प्राकृतिक के नैसर्गिक सौंदर्य का समावेश इसमें अनायास ही होता है। फूलों का हंसना, वृक्षों का बसंती हवाओं के साथ खेलना,वर्षा की बूंदों का चुपचाप टपकना, उषाकाल की लाली, नदियों का कल-कल प्रवाह का अनावृत्त सौंदर्य अन्य कहीं अपने स्वाभाविक रूप में शायद ही मिले। पं. रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में -"ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस हैं! छंद नहीं, केवल लय है!! लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है!!! ग्रामीण मनुष्यों के स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गीत ग्रामगीत हैं।"8

लोकगीतों का महत्व-

लोकगीत हमारे मानवीय जीवन का आदि से अंत तक का एक मार्मिक इतिहास प्रस्तुत करता है। कहीं उसमें उल्लास के गीत हैं तो कहीं निराशा के। कहीं उसमें व्यक्ति को नैतिक चरित्र की प्रेरणा मिलती है तो कहीं बुराई का विरोध करने का आत्मबल। कहीं बहन का उलाहना है तो कहीं पिता की डांट। कुल मिलाकर लोकगीत हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक अर्थात जीवन का कोई ऐसा पक्ष नहीं है जिसकी झलक लोकगीतों में न मिले, उनसे कोई प्रेरणा न मिले। लोकगीत केवल एक गीत ही नहीं होता अपितु विश्वास और आस्था को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाने वाली अदृश्य डोर के रूप में होते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति की संचित थाती को पीढ़ी-दर-पीढ़ी संप्रेषित भी करता है। डॉ. बापू राव देसाई के शब्दों में -"लोकगीत जीवन की प्रत्येक अवस्था यानी गर्भावस्था से लेकर मृत्यु तक से प्रेरणा ग्रहण कर काल सुरम्य भावनाओं को अभिव्यक्त करता है। लोकगीतों के अनेक लाभ हैं जैसे- बोझ को हल्का करना, समय-चयन, जन जागरण, अनाचार का विरोध करना, ज्ञान की वृद्धि, सामान्य जनों का मनोरंजन आदि। प्रत्येक जाति या समाज के अपने गीत हैं, जो हमें जन-जीवन के समस्त पक्षों का दर्शन कराते हैं। इन्हीं के द्वारा अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, पौराणिक अंतर कथाएं भी प्रस्फुटित हुई हैं। इनमें अनेक नामों तथा घटनाओं पर स्थानीय रंग चढ़ाने से अपनापन समा जाता है।"9

'कांगड़ा के लोकगीत' की भूमिका में अमृता प्रीतम जी ने लिखा है कि-" लोकगीतों के पवित्र मोती चाहे सागर की अतल गहराइयों में पड़ा रहे, किंतु जब उसे निकालो वह पूर्व अवस्था के समान ही पवित्र और आभायुक्त होती है। सुधारवादी आंदोलनों की चक्की कई बार मासूम गीतों को तथा उनकी निर्दोष परंपरा को पीसने के लिए उद्यत हो जाती है, किंतु नदियों को तो कोई बांध रोक सकता है पर आकाश की बौछार को कौन सी हथेली रोक सकती है? जनता ऐसी चक्की पर भी गीत रच देती है तथा भावी संताने पिछली पीढ़ी की धरोहर को अपने हृदय में संजोए रखती हैं। लोग संध्याकालीन झुटपुटों तथा फूटती किरणों में बैठकर हृदयों की इस संपत्ति का आनंद लूटते हैं। ये गीत छंद जीवन के संयुक्त मंचों पर भी गूंजते हैं तथा प्रेमियों की एकाकी निराशाओं में भी सिसकते हैं।" 10

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि लोकगीत हमारी सभ्यता-संस्कृति की अनमोल निधि हैं। इनके भीतर मानवीय जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म संवेदनाओं से लेकर सुख-दुख के बड़े से बड़े पहाड़ के भी दर्शन हो जाते हैं। अतः इन गीतों का हमारे जीवन में आशातीत महत्व है। समय और परिस्थितियों के अनुसार यह अलग बात है कि ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, नैतिक आदि कोई एक पक्ष अधिक प्रभावशाली हो और दूसरा कम लेकिन जीवन के सभी क्षेत्रों का संबंध इन गीतों से आवश्य है। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं की लोकगीत और मनुष्य का जीवन दोनों एक दूसरे के प्रतिबिंब हैं।

संदर्भ संकेत

1- स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ़ ब्लाकलोर माइथोलॉजी एंड लीजेंड, खंड-11, पृष्ठ- 1033

2- डॉ. कुंज बिहारी दास: ए स्टडीज ओरिजन ऑफ फोकलोर भूमिका, पृष्ठ - 1

3- बाबू गुलाब राय -काव्य के रुप,प्रतिभा प्रकाशन, नई दिल्ली-1967, पृष्ठ- 111

4- डॉ. विद्या बिन्दू सिंह- अवधी लोकगीत: एक समीक्षात्मक अध्ययन, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद -1988 ,पृष्ठ - 25

5- डॉ. कुलदीप- लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन आगरा -1972 ,पृष्ठ- 49

6- डॉ. चिंतामणि उपाध्याय- मालवी लोकगीत एक विवेचनात्मक अध्ययन, मंगल प्रकाशन जयपुर - 1964 ,पृष्ठ- 60

7- डॉ. चिंतामणि उपाध्याय द्वारा लोकायन के पृष्ठ -15 पर उल्लिखित तमिल कांफ्रेंस के विवरण से लिया गया अंश।

8- पं. रामनरेश त्रिपाठी- कविता कौमुदी, तीसरा भाग, ग्रामगीत ,हिन्दी मंदिर सुल्तानपुर, तृतीय संस्करण - 1934, पृष्ठ- 54

9- डॉ. बापूराव देसाई- लोक साहित्य, विनय प्रकाशन- 1996 , पृष्ठ- 74

10- पद्मचंद्र कश्यप- कुल्लाई लोक साहित्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली, 1972 , पृष्ठ- 26